क्रियान्वयन पर भी अधिक जोर दिया जा रहा है।

भारतीय जनजातियों की समस्याएँ एवं उनका समाधान (Problems of Indian Tribes and their Solution)

अनुसूचित जातियों की तरह अनुसूचित जनजातियाँ भी विविध प्रकार की समस्याओं का शिकार हैं। इनकी कुछ समस्याएँ तो अनुसूचित जातियों से मिलती-जुलती हैं, जबकि कुछ इनकी अपनी विशिष्ट समस्याएँ हैं। इनकी प्रमुख समस्याएँ एवं उनका समाधान निम्नवर्णित है—

(1) निर्धनता की समस्या (Problem of Poverty)

भारत में अनेक विद्वानों ने परम्परागत कृषक एवं जनजातीय संरचना तथा इसमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया है। इन अध्ययनों के निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण एवं जनजातीय भारत में निर्धनता में वृद्धि के साथ-साथ इनकी श्रम-शक्ति की संख्या भी बढ़ रही है। ग्रामीण एवं जनजातीय विकास की विभिन्न योजनाओं, हरित क्रान्ति, भूमि सुधारों आदि का लाभ पहले से सम्पन्न लोगों को ही मिल पा रहा है। समाज के निम्नतम वर्ग, जिन्हें सामाजिक-आर्थिक सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता है, वे समाज के विकास की इन सभी योजनाओं के लाभों से पूरी तरह से वंचित ही हैं। इसका एक अन्य परिणाम यह हो रहा है कि अधिकाधिक सीमान्त और छोटे कृषक भूमिहीन श्रमिकों के रूप में परिवर्तित होते जा रहे हैं, जबकि भूमिहीन कृषक दरिद्र बनते जा रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नवीन प्रौद्योगिकी एवं उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है, परन्तु इसका लाभ प्रमुखत: बड़े कृषकों या भू-स्वामियों को ही हुआ है। अत: कृषक एवं जनजातीय संरचना में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया न तो कमजोर वर्गों को ऊपर उठाने में सहायक रही है और न ही उनकी आर्थिक दशा को उन्नत करने में। इसके विपरीत, नवीन कृषि प्रौद्योगिकी तथा भूमि सुधारों के लाभ कुछ बड़े-बड़े जोतों या फार्मों के मालिकों या 'आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कृषकों' को ही अधिक हुए हैं। बढ़े हुए मूल्यों का लाभ भी छोटे तथा सीमान्त कृषकों की तुलना में बड़े कृषकों एवं भू-स्वामियों को ही मिल पा रहा है। इसके फलस्वरूप जनजातियों में निर्धनता बढ़ी है।

Scanned with CamScanner

भारतीय जनजातियों, विशेष रूप से अनुसूचित जनजातियों में निर्धनता का स्तर अत्यन्त शोचनीय है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि आधे से अधिक जनजातीय समुदायों के लोग निर्धनता रेखा के नीचे अपना जीवनयापन करते हैं। जनजातियाँ धीरे-धीरे एक ऐसी प्रक्रिया का शिकार होती जा रही हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके परम्परागत सामुदायिक आधारों और आर्थिक मूलाधारों का अपहरण होता जा रहा है। यह अपहरण राज्य सरकार एवं व्यापारियों द्वारा किया जा रहा है। मध्य प्रदेश में जनजातियों के भूतपूर्व कमिश्नर **ब्रह्मदेव शर्मा** के अनुसार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप जनजातीय जीवनयापन के साधन अस्त-व्यस्त हो गए हैं। इन साधनों पर जो उनके परम्परागत अधिकार थे, सरकार ने उनको मान्यता नहीं दी है और उनके लिए इन साधनों के प्रयोग पर पाबन्दी लगा दी गई है। इससे अनेक काम करने वाले जनजातीय लोग उत्पादन के साधनों से अलग हो गए हैं। जो आदिवासी मजदूरी करने लगे हैं उनको न तो न्यूनतम मजदूरी ही मिल पाती है और न ही उन्हें किश्तें ही दी जाती हैं, उनकी स्वाधीनता का सौदा किया जाता है और उन्हें अपने आपको मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हीन और वंचित समझने के लिए विवश किया जाता है। इससे जनजातियों में आत्म-सम्मान की भावना कम हुई है। जंगलों से सम्बन्धित उनके परम्परागत अधिकार पूरी तरह से छिन गए हैं और वे दिन-प्रतिदिन निर्धन होते जा रहे हैं। बड़ी-बड़ी परियोजना के परिणामस्वरूप अनेक निर्धन जनजातीय लोगों को अपने मूल स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ा है। लचर कानूनी व्यवस्था के परिणामस्वरूप न तो उन्हें पर्याप्त मुआवजा ही दिया गया है और न ही उनकी पुनर्स्थापना के लिए नियोजित प्रयास किए गए हैं। जनजातियों के लोगों को आर्थिक विकास कार्यक्रमों का उतना लाभ नहीं मिल पाया है जितना अनुसूचित जातियों के लोगों को मिला है। भारत की जनजातीय समस्याओं में निर्धनता एवं दरिद्रता सबसे गम्भीर समस्या इसलिए है क्योंकि इससे उनमें सामाजिक निराशा जन्म लेती है, उनमें अलगाव की प्रवृत्तियाँ विकसित होने लगती हैं तथा अन्ततः इससे समाज में प्रायः उथल-पुथल का खतरा पैदा होने एवं जनजातीय विद्रोह की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए 'गरीबी हटाओ' आज सरकार का प्रमुख उद्देश्य बन गया है। भारत के करोड़ों लोगों के पास खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए वस्त्र तथा रहने के लिए मकान नहीं हैं। जनजातीय लोगों का जीवन स्तर अति निम्न है तथा वे न्यूनतम जीवन-निर्वाह स्तर से भी नीचे रह रहे हैं। सरकार द्वारा चलाए जाने वाले 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों से भी उन्हें अधिक लाभ नहीं हो पाया है।

जनजातीय निर्धनता हेतु जनजातीय निवास-स्थान एवं भौगोलिक कारण भी उत्तरदायी हैं। कुछ स्थानों पर भूमि उपजाऊ न होकर ऊसर होती है। वहाँ खनिज पदार्थ भी उपलब्ध नहीं होते। कुछ स्थानों पर कोयले व लोहे के उत्पादन के साधनों की कमी होती है। ऐसे स्थानों पर रहने वाली जनजातियाँ प्रायः दरिद्र होती हैं। उदाहरणार्थ, पहाड़ी प्रदेशों की भूमि कंकरीली व पथरीली होती है, वहाँ की जमीन इस योग्य नहीं होती कि वहाँ पर खेती की जा सके। बड़ी कठिनाई से थोड़ी सी भूमि को समतल बनाकर वहाँ अनाज की पैदावार की जाती है। अतः अन्न की पैदावार बहुत कम होती है। इसलिए पहाड़ों में रहने वाले अधिकांश आदिवासी काफी दरिद्र होते हैं।

जलवायु व मौसम की प्रतिकूलता भी दरिद्रता पर गहरा प्रभाव डालती है। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर जलवायु सदैव ठण्डी रहती है। इसी प्रकर से एस्कीमो प्रदेश व हिमालय पर्वत के शिखरों पर सदैव बर्फ पड़ती है। सम्पूर्ण प्रदेश व पर्वत मालाएँ सफेद रुई के सदृश बर्फ से आच्छादित रहते हैं। राजस्थान भी इसी श्रेणी में आता है जहाँ रेगिस्तान होने के कारण खेती नहीं हो पाती और इससे लोगों में दरिद्रता बढ़ती है।

जनजातियों में निर्धनता का एक अन्य कारण पुराने ढंग से कृषि का किया जाना है। आदिवासियों के अशिक्षित होने के कारणवश उन्हें नवीन वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करना नहीं

Scanned with CamScanner

आता। अधिकांश जनजातीय जनसंख्या कृषि में ही लगी हुई है। कृषि जनजातियों के लिए जीवनयापन का अपर्याप्त साधन बनती जा रही है। कई बार तो आदिवासी निर्धनता के कारण वे जमीन भी बेच देते हैं जो उनकी आजीविका का प्रमुख स्रोत होती है तथा उनके पास गुजारा करने हेतु कोई आय का स्रोत शेष नहीं बचता है। ऐसी स्थिति में उनमें दरिद्रता की वृद्धि होती है। हमारे देश की कृषि पर आधारित जनता में अर्द्ध-बेरोजगारी अधिक पायी जाती है, जोकि दरिद्रता को बढ़ावा दे रही है।

जनजातियाँ धर्म में अटूट विश्वास रखने वाली होती हैं। धर्म भी कभी-कभी जनजातीय समाज पर बुरे प्रभाव डालता है। आदिवासी धर्म के आधार पर ही अन्धविश्वासी बने हुए हैं। कुछ लोग हर बात का सम्बन्ध भाग्य से जोड़ते हैं। अशिक्षित लोग धार्मिक संस्कारों पर कर्ज लेकर हजारों रुपये व्यय करते हैं। दरिद्र व्यक्ति अपनी दरिद्रता को भगवान का दिया हुआ अभिशाप मानता है जिसे दूर करना कठिन है। इसलिए वह ज्यादा कठिन प्रयास भी नहीं करता है।

(2) ऋणग्रस्तता की समस्या (Problem of Indebtedness)

आदिवासियों में ऋणग्रस्तता भी एक प्रमुख समस्या बन गई है। ऐसा माना जाता है कि उत्तर-पूर्व के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर समस्त भारतीय जनजातीय जनसंख्या ठेकेदारों एवं साहूकारों के ऋणों के बोझ के नीचे दबी हुई है। ठेकेदार, साहूकार और व्यवसायी सीधे-सादे एवं सरल स्वभाव वाले आदिवासियों को सरलता से कर्ज दे देते हैं। कर्ज में लिया हुआ धन अन्ततोगत्वा उनके लिए कभी न भर सकने वाला गड्ढा बन जाता है। उनकी कई पीढ़ियाँ निरन्तर मजदूरी करके भी इस ऋण से मुक्ति नहीं पा पातीं। इसके एवज में पूरे जनजाति परिवार को साहूकार के खेतों और घरों में काम करना पड़ता है और उनका अनेक प्रकार से शोषण होता है। इस प्रकार, ऋणग्रस्तता के परिणामस्वरूप जनजातियों में बँधुआ मजदूरी की प्रथा भी बढ़ती जा रही है।

भारतीय जनजातियों में ऋणग्रस्तता के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

(1) अधिकांश जनजातियों में पाई जाने वाली निर्धनता एवं भुखमरी,

(2) नवीन वन नीतियों के परिणामस्वरूप भूमि तथा वनों पर जनजातीय अधिकारों का हनन,

(3) पुराने तरीकों द्वारा की जाने वाली कृषि का अत्यन्त पिछड़ापन एवं अत्यधिक कम उत्पादन,

(4) जनजातियों में पाए जाने वाले अन्धविश्वास, भाग्यवादी प्रवृत्ति एवं समुचित विचारधारा,

(5) विवाह, मृत्यु, मेलों, संस्कारों एवं उत्सवों में अपनी क्षमता से अधिक व्यय करने की प्रवृत्ति तथा

(6) दुर्बल जनजातीय आर्थिक व्यवस्था।

उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप निर्धन आदिवासियों को सदैव पैसे की आवश्यकता रहती है और वे ठेकेदारों, साहूकारों और व्यावसायियों के शोषण का सरलता से शिकार हो जाते हैं। ऋणग्रस्तता जनजातियों में पाया जाने वाला एक ऐसा कुचक्र है जिससे उन्हें सरलता से मुक्ति नहीं मिल पाती है। अधिक ब्याज दर पर लिए जाने वाले ऋण को चुकाना आदिवासियों के बलबूते के बाहर की बात होती है। यह समस्या जनजातियों में निराशा एवं आक्रोश का कारण भी है।

निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता की समस्या के समाधान हेतु जनजातियों को ठेकेदारों, साहूकारों एवं व्यावसायियों के शोषण से बचाए जाने की आवश्यकता है। जनजातीय विकास पर अध्ययन कर रहे अनेक दलों ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर बल दिया है कि जनजातीय व्यवस्था पर आर्थिक विकास का कार्यक्रम तब तक प्रभाव नहीं डाल सकता है जब तक उन्हें साहूकारों के चंगुल से बचाने की समुचित व्यवस्था न की जाए। इस दिशा में अनेक प्रयास किए गए हैं। संविधान की

Scanned with CamScanner

पाँचवीं अनुसूची राज्य के राज्यपाल को जनजातीय क्षेत्रों में साहूकारों और ऋणदाताओं के व्यवसाय को नियमित करने का अधिकार प्रदान करती है। इन अधिकारों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकारें ऋण से मुक्ति तथा ऋण उन्मूलन हेतु नियम बना सकती हैं। अनेक राज्यों में इस दिशा में काफी प्रयास भी किए गए हैं। ऋणग्रस्तता से मुक्ति जनजाति-विकास या कल्याण की पहली शर्त है, और ऐसा तभी हो सकता है जब सहकारी साख-समितियाँ बनाई जाएँ और सरकार इन ऋणों के निपटारे के लिए कोई ठोस प्रोग्राम बनाए। यदि मूल कर्ज से ज्यादा धन ब्याज में दे दिया गया हो तो कर्जे को समाप्त घोषित कर देना चाहिए और आदिवासियों को काम के लिए कानून के अनुसार उचित मजदूरी दिलाई जानी चाहिए।

(3) भूमि अलगाव या पृथकता की समस्या (Problem of Land Alienation)

जनजातियों का अपनी भूमि से अत्यधिक लगाव होता है क्योंकि वे कृषि द्वारा ही अपना जीवनयापन करते हैं। उनमें भूस्वामित्व की तीव्र इच्छा होती है। **नदीम हसनैन**[4] के अनुसार मध्य प्रदेश के जनजातीय विकास खण्डों में हुए आर्थिक सर्वेक्षण से पता चलता है कि एक जनजातीय परिवार के पास औसतन 15·59 एकड़ भूमि थी। राजस्थान सरकार द्वारा डूँगरपुर तथा बाँसवाड़ा जिले में किए गए आर्थिक-सामाजिक सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हुआ कि डूँगरपुर में औसत रूप से 4·95 एकड़ भूमि है। मणिपुर में किए गए ऐसे ही सर्वेक्षण द्वारा यह पता चला है कि वहाँ औसत रूप से प्रति परिवार 2·80 एकड़ भूमि है। परन्तु सरकार की नवीन वन नीति ने जनजातियों में भूमि अलगाव की समस्या विकसित कर दी है।

भूमि अलगाव का तात्पर्य जनजातीय परिवार या किसी आदिवासी का भूमि के स्वामित्व से विलग होना है। भूमि से अलगाव अंग्रेजों के शासनकाल में ही प्रारम्भ हो गया था जब जनजातीय क्षेत्रों में भी ज़मींदारी प्रथा तथा भारतीय रजवाड़ों की व्यवस्था को लागू किया गया था। तब पहली बार जनजातियों को महसूस हुआ था कि ये जंगल और भूमि उनके नहीं हैं, वे तो एक कृषक के रूप में उसमें खेती कर रहे हैं जिसके एवज में उन्हें लगान देना है। शान्ति और व्यवस्था की स्थापना होने से आस-पास के गाँव के लोग, जहाँ भूमि पर दबाव बढ़ रहा था, भी जनजातीय अंचलों की ओर प्रवास करने लगे थे। शुरू-शुरू में तो कुछ ऐसे लोग पहुँचे; जैसे—कृषक, व्यापारी या कारीगर; जो वहाँ जनजाति में स्थायी रूप से बसने के लिए पहुँचे थे। प्रारम्भ में उनका स्वागत ही हुआ परन्तु धीरे-धीरे व्यापारियों को उन भोले-भाले आदिवासियों के आर्थिक शोषण का स्वर्णिम मौका जान पड़ा। वे साहूकार बन गए तथा भूमि के जटिल कानूनों व बहीखातों के रख-रखाव से अनभिज्ञ जनजाति के लोगों को लूटने का सिलसिला चल पड़ा और अपनी जमीनों से ही वे बेदखल होने लगे। इस प्रकार, निर्धनता एवं धन की कमी भूमि अलगाव का एक प्रमुख कारण बन गई। सहकारी ऋण समितियों से उत्पादन कार्य हेतु लिए जाने वाले ऋण द्वारा अपनी भूमि बचाने हेतु इनके अनुभव अच्छे नहीं रहे।

कहीं-कहीं उन्हें औद्योगीकरण का भी सामना करना पड़ा। यह सच है कि मिलों की स्थापना के लिए ली जाने वाली भूमि की उन्हें क्षतिपूर्ति की रकम दी गई परन्तु एक तो वह रकम मनमाने ढंग से निर्धारित की गई और दूसरे, उनकी पुनर्स्थापना की कोई कारगर योजना लागू नहीं की गई। नकद रुपये के लाभकारी उपयोग से आदिवासी परिचित नहीं हैं; अतः वह रुपया अनुत्पादक चीजों पर शीघ्र ही खर्च हो जाता है और आदिवासी परिवार विकट परिस्थिति में पड़ जाते हैं।

4. नदीम हसनैन, **जनजातीय भारत**, पृष्ठ 159.

Scanned with CamScanner